वैंकय्या नायडू का हिन्दी भाषा का दर्द समझें

हिन्दी की दुर्दशा आहत करने वाली है। इस दुर्दशा के लिये हिन्दी वालों का जितना हाथ है, उतना किसी अन्य का नहीं। अंग्रेजों के राज में यानी दो सौ साल में अंग्रेजी उतनी नहीं बढ़ी, जितनी पिछले सात दशकों में बढ़ी है। इस त्रासद स्थिति की पड़ताल के लिये हिन्दी वालों को अपना अंतस खंगालना होगा। पैसा, तथाकथित आधुनिकता, समृद्धि एवं राजनीतिक मानसिकता इसके कारण प्रतीत होते हैं तो भी इसकी सूक्ष्मता में जाने की जरूरत है। यह खुशी की बात है कि उपराष्ट्रपति वैंकय्या नायडू इनदिनों हिंदी को प्रोत्साहन देने की लिये प्रयास कर रहे हैं, जबसे वे उपराष्ट्रपति बने हैं, अपने हर भाषण में हिन्दी को उसका स्थान दिलाने की बात करते हैं।

गतदिनों उन्होंने हिन्दी के बारे में ऐसी बात कह दी है, जिसे कहने की हिम्मत महर्षि दयानंद, महात्मा गांधी और डॉ. राममनोहर लोहिया में ही थी। उन्होंने कहा कि 'अंग्रेजी एक भयंकर बीमारी है, जिसे अंग्रेज छोड़ गए हैं।" अंग्रेजी का स्थान हिंदी को मिलना चाहिए, लेकिन आजादी के 70 साल बाद भी सरकारें अपना काम-काज अंग्रेजी में करती हैं, यह देश के लिये दुर्भाग्यपूर्ण एवं विडम्बनापूर्ण स्थिति है। वैंकय्या नायडू का हिन्दी को लेकर जो दर्द एवं संवेदना है, वह सही और अनुकरणीय है। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी राष्ट्र एवं राज भाषा हिन्दी का सम्मान बढ़ाने एवं उसके अस्तित्व एवं अस्मिता को नयी ऊंचाई देने के लिये अनूठे उपक्रम किये हैं। हिन्दी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र का प्रतीक है, उसकी उपेक्षा एक ऐसा प्रदूषण है, एक ऐसा अंधेरा है जिससे छांटने के लिये ईमानदारी से लड़ना होगा। क्योंकि हिन्दी ही भारत को सामाजिक-राजनीतिक और भाषायिक दृष्टि से जोड़नेवाली भाषा है। हिन्दी को सम्मान दिलाने के लिये नायडू के प्रयास राष्ट्रीयता को सुदृढ़ करने की दिशा में एक अनुकरणीय एवं सराहनीय पहल है। ऐसा करके वे महात्मा गांधी, गुरु गोलवलकर और डॉ. राममनोहर लोहिया के सपने को साकार कर रहे हंै।

देश में एक तबका अंग्रेजी मानसिकता का है। जो आवश्यक मानदंडों की उपेक्षा करते हुए जिस तरह की भाषाई विकृतियां प्रस्तुत कर रहा है, उस पर हल्ला बोलने की आवश्यकता है। लेकिन हम में यानी हिन्दीभाषियों में अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम और प्रतिबद्धता अभी तक जागृत नहीं हो पाई है। वैंकय्या नायडू के इस ताजा बयान ने भारत के अंग्रेजी मानसिकता के दिमागों में खलबली मचा दी है। कई अंग्रेजी अखबारों और टीवी चैनलों ने वैंकय्याजी के बयान पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उनके खिलाफ अंग्रेजी अखबारों में लेख लिखे जा रहे हैं ? क्यों हो रहा है, ऐसा ? क्योंकि उन्होंने देश के सबसे बौद्धिक और ताकतवर तबके की दुखती रग पर उंगली रख दी है।

हिन्दी भाषा का मामला भावुकता का नहीं, ठोस यथार्थ का है। हिन्दी विश्व की एक प्राचीन, समृद्ध तथा महान भाषा होने के साथ ही हमारी राजभाषा भी है, यह हमारे अस्तित्व एवं अस्मिता की भी प्रतीक है, यह हमारी राष्ट्रीयता एवं संस्कृति की भी प्रतीक है। भारत की स्वतंत्रता के बाद 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने एक मत से यह निर्णय लिया कि हिन्दी ही भारत की राजभाषा होगी। इस महत्वपूर्ण निर्णय के बाद ही हिन्दी को हर क्षेत्र में प्रचारित-प्रसारित करने के लिए 1953 से सम्पूर्ण भारत में 14 सितम्बर को प्रतिवर्ष हिन्दी-दिवस के रूप में मनाया जाता है। गांधीजी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की वकालत की थी। वे स्वयं संवाद में हिन्दी को प्राथमिकता देते थे। आजादी के बाद सरकारी काम शीघ्रता से हिन्दी में होने लगे, ऐसा वे चाहते थे। राजनीतिक दलों से अपेक्षा थी कि वे हिन्दी को लेकर ठोस एवं गंभीर कदम उठायेंगे। लेकिन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से आक्सीजन लेने वाले दल भी अंग्रेजी में दहाड़ते देखे जा सकते हैं। हिन्दी को वोट मांगने और अंग्रेजी को राज करने की भाषा हम ही बनाए हुए हैं। कुछ लोगों की संकीर्ण मानसिकता है कि केन्द्र में राजनीतिक सक्रियता के लिये अंग्रेजी जरूरी है। ऐसा सोचते वक्त यह भुला दिया जाता है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जैसे शीर्ष पर बैठे नेता बिना अंग्रेजी की दक्षता के सक्रिय और सफल है। नायडू एक अहिन्दी प्रांत से होकर भी हिन्दी में बोलते हैं, उसे आगे बढ़ाने की बात करते हैं।

हिन्दी राष्ट्रीयता की प्रतीक भाषा है, उसके लिये नायडू की संवेदना और दर्द बार-बार उजागर हो रहा है, लेकिन अंग्रेजी तबका उन पर 'हिंदी साम्राज्यवाद' का आरोप लगा रहा है और उनके विरुद्ध उल्टे-सीधे तर्कों का अंबार लगा रहा है। नायडू ने यह तो नहीं कहा कि अंग्रेजी में अनुसंधान बंद कर दो, अंग्रेजी में विदेश नीति या विदेश-व्यापार मत चलाओ या अंग्रेजी में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान का बहिष्कार करो। उन्होंने तो सिर्फ इतना कहा है कि देश की शिक्षा, चिकित्सा, न्याय प्रशासन आदि जनता की जुबान में चलना चाहिए। दो मराठी या बांग्ला भाषी लोग अंग्रेजी जानते हुए भी अपनी भाषा में बात करते हुए गर्व महसूस करते हैं। लेकिन हिन्दी में प्रायः ऐसा नहीं होता। हिन्दी वाला अपनी अच्छी हिन्दी को किनारे कर कमजोर अंग्रेजी के साथ खुद को ऊंचा समझने का भ्रम पालता है। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ? क्यों हम खुद ही अपनी भाषा एवं अपनी संस्कृति को कमजोर करने पर तुले हैं ?

भारत लोकतांत्रिक राष्ट्र है लेकिन लोक की भाषा कहां है ? हिन्दी को हमने पांवों में बिठा दिया है और अंग्रेजी को सिंहासन पर बिठा रखा है। नायडूजी अंग्रेजी का नहीं, उसके वर्चस्व का विरोध कर रहे थे। यदि भारत के पांच-दस लाख छात्र अंग्रेजी को अन्य विदेशी भाषाओं की तरह सीखें और बहुत अच्छी तरह सीखें तो उसका स्वागत है लेकिन 20-25 करोड़ छात्रों के गले में उसे पत्थर की तरह लटका दिया जाए तो क्या होगा ? हिंदी को दबाने की नहीं, उपर उठाने की आवश्यकता है। लेकिन अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण आज भी हिन्दी भाषा को वह स्थान प्राप्त नहीं है, जो होना चाहिए। चीनी भाषा के बाद हिन्दी विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। भारत और अन्य देशों में 70 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। पाकिस्तान की तो अधिकांश आबादी हिंदी बोलती व समझती है। बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, तिब्बत, म्यांमार, अफगानिस्तान में भी लाखों लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। फिजी, सुरिनाम, गुयाना, त्रिनिदाद जैसे देश तो हिंदी भाषियों द्वारा ही बसाए गये हैं। दुनिया में हिन्दी का वर्चस्व बढ़ रहा है, लेकिन हमारे देश में ऐसा नहीं होना, बड़े विरोधाभास को दर्शाता है।

हिन्दी को सही अर्थों में राष्ट्र भाषा का दर्जा नहीं मिलने के पीछे सबसे बड़ी बाधा सरकार के स्तर पर है क्योंकि उसके उपयोग को बढ़ावा देने में उसने कभी भी दृढ़ इच्छा शक्ति नहीं दिखाई। सत्तर साल में बनी सरकारों के शीर्ष नेता यदि विदेशी राजनेताओं के साथ हिन्दी में बातचीत का सिलसिला बनाये रखते तो इससे तमाम सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा मिलता। प्रसन्नता हैं कि वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने इस दिशा में पहल की है। उन्होंने अपनी विदेश यात्राओं में हिन्दी में भाषण देकर और विदेशी प्रतिनिधियों से हिन्दी भाषा में ही बातचीत करके एक साहसिक उपक्रम किया है। प्रधानमन्त्री की यह भावना राष्ट्र भाषा के प्रति सम्मान और समर्पण को दर्शाती है।

किसी भी देश की भाषा और संस्कृति किसी भी देश में लोगों को लोगों से जोड़े रखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भाषा राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा प्रगति के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। कोई भी राष्ट्र बिना एक भाषा के सशक्त व समुन्नत नहीं हो सकता है अतः राष्ट्र भाषा उसे ही बनाया जाता हैं जो सम्पूर्ण राष्ट्र में व्यापक रूप से फैली हुई हो। जो समूचे राष्ट्र में सम्पर्क भाषा के रूप में कारगर सिद्ध हो सके। राष्ट्र भाषा सम्पूर्ण देश में सांस्कृतिक और भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रमुख साधन है। महात्मा गांधी ने सही कहा था कि राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की एकता और अखण्डता तथा उन्नति के लिए आवश्यक है।' राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी को प्रमुखता से स्वीकार किया गया है। क्योंकि इसे बोलने वालों की सर्वाधिक संख्या है। यह बोलने, लिखने और पढ़ने में सरल है। इसलिये शिक्षा का माध्यम भी मातृभाषा होनी चाहिए क्योंकि शिक्षा विचार करना सिखाती है और मौलिक विचार उसी भाषा में हो सकता है जिस भाषा में आदमी सांस लेता है, जीता है। जिस भाषा में आदमी जीता नहीं उसमें मौलिक विचार नहीं आ सकते।

अंग्रेजी बोलने वाला ज्यादा ज्ञानी और बुद्धिजीवी होता है यह धारणा हिन्दी भाषियों में हीन भावना ग्रसित करती है। हिन्दी भाषियों को इस हीन भावना से उबरना होगा। हिन्दी किसी भाषा से कमजोर नहीं है। हमें जरूरत है तो बस अपना आत्मविश्वास मजबूत करने की। यह कैसी विडम्बना है कि जिस भाषा को कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे भारत में समझा जाता हो, उस भाषा के प्रति घोर उपेक्षा व अवज्ञा के भाव, हमारे राष्ट्रीय हितों में किस प्रकार सहायक होंगे। हिन्दी का हर दृष्टि से इतना महत्व होते हुए भी प्रत्येक स्तर पर इसकी इतनी उपेक्षा क्यों ? इस उपेक्षा को उपराष्ट्रपति वैंकय्या नायडू के अनूठे प्रयोगों से ही दूर किया जा सकेगा। इसी से देश का गौरव बढ़ेगा। प्रेषक:

(ललित गर्ग)
बी-380, प्रथम तल, निर्माण विहार, दिल्ली-110092
9811051133